# भारत संघ

बनाम

# ज्योति प्रकाश मित्तर

(Union of India

*Vs.*

Jyoti Prakash Mitter)

**(21 जनवरी, 1971)**

**(मुख्य न्यायाधिपति जे० सी० शाह, न्या० एस० एम० सीकरी, वी० भार्गव, के० एस० हेगडे, ए० एन० ग्रोवर और आई० डी० दुआ)**

**भारत का संविधान—अनुच्छेद 217(1) और (3)—अनुच्छेद 217(3) के अधीन उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की आयु के प्रश्न का विनिश्चय करने की शक्ति का प्रयोग, भारत के मुख्य न्यायाधिपति से परामर्श करने के पश्चात् किया जाना—जन्म तारीख का विनिश्चय करने के पूर्व राष्ट्रपति के समक्ष वैयक्तिक सुनवाई का अवसर दिया जाना राष्ट्रपति के विवेकाधीन है—ऐसा अवसर न दिए जाने से नैसर्गिक न्याय की भग्नता नहीं हुई—भारत के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा दी गई सलाह के अनुसार राष्ट्रपति द्वारा विनिश्चय किया जाना मुख्य न्यायाधिपति के निर्णय के प्रति अभ्यर्पण नहीं है ।**

प्रत्यर्थी ज्योति प्रकाश मित्तर की आयु बिहार सरकार के राजपत्र में, जिसमें उसे मैट्रीकुलेशन में सफल घोषित किया गया था, अप्रैल, 1918 में 16 वर्ष 3 मास दर्शित की गई थी । सन् 1923 में उसने इण्डियन सिविल सर्विस परीक्षा में प्रवेश पाने के लिए अपनी जन्म तारीख 27 दिसम्बर, 1901 घोषित की थी । सन् 1931 में उसने कलकत्ता उच्च न्यायालय में विधि व्यवसाय आरम्भ कर दिया और 11 फरवरी, 1949 में उसे अपर न्यायाधीश नियुक्त किया गया । जब दिसम्बर, 1949 में उसकी स्थायी न्यायाधीश के पद के लिए सिफारिश की गई तब उसने अपनी आयु 45 वर्ष घोषित की । सन् 1956 में भारत सरकार ने उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की आयु आदि के बारे में जानकारी एकत्र की । उस समय प्रत्यर्थी ने यह घोषित किया कि उसकी जन्म तारीख 27 दिसम्बर, 1904 है । उसकी यह घोषणा स्वीकार कर ली गई । भारत सरकार को यह जानकारी मिली कि प्रत्यर्थी की सही जन्म तारीख 27 दिसम्बर, 1901 है और इस पर जांच आरम्भ कर दी गई । अप्रैल, 1959 में कलकत्ता उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति ने प्रत्यर्थी से अपनी जन्म तारीख के बारे में प्ररूपिक कथन करने के लिए कहा । मई, 1959 में प्रत्यर्थी ने

मुख्य न्यायाधिपति को यह सूचना दी कि मैट्रीकुलेशन प्रमाणपत्र में लिखी हुई उसकी आयु गलत है और उसमें उसे उसकी वास्तविक आयु से तीन वर्ष बड़ा दिखाया गया है, क्योंकि यदि उसकी आयु की सही घोषणा की गई होती तो उसे सन् 1918 में मैट्रीकुलेशन परीक्षा में बैठने नहीं दिया जाता।

15 मई, 1961 को भारत के राष्ट्रपति ने गृहमन्त्री की सिफारिश पर यह निदेश दिया कि प्रत्यर्थी की आयु मैट्रीकुलेशन प्रमाणपत्र में घोषित जन्म तारीख के आधार पर अवधारित की जाए। इस पर प्रत्यर्थी ने दिल्ली स्थित पंजाब उच्च न्यायालय में मेण्डेमस की रिट के लिए एक पिटीशन फाइल किया किन्तु वह पिटीशन खारिज कर दिया गया। तब प्रत्यर्थी ने जनवरी, 1962 में कलकत्ता उच्च न्यायालय में एक पिटीशन फाइल किया जिसमें कलकत्ता उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति को एक पक्षकार अर्थात् प्रत्यर्थी बनाया गया था। वह पिटीशन आरम्भ में ही खारिज कर दिया गया। किन्तु अपील किए जाने पर उच्च न्यायालय की विशेष न्यायपीठ ने सशर्त न्यादेश निकाले जाने का निदेश दिया। उच्चतम न्यायालय ने उच्च न्यायालय के आदेश के विरुद्ध की गई अपील को खारिज कर दिया। तब कलकत्ता उच्च न्यायालय के पांच न्यायाधीशों की विशेष न्यायपीठ ने पिटीशन की सुनवाई की। प्रत्यर्थी द्वारा फाइल किया गया पिटीशन खारिज और न्यादेश प्रभावोन्मुक्त कर दिया गया। इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय के आदेश के विरुद्ध की गई अपील में कुछ निदेश दिए। उन निदेशों के दिए जाने के कारणों को समझने के लिए इन परिस्थितियों पर विचार किया जाना आवश्यक है। जब अपील इस न्यायालय में लम्बित थी, उस समय संविधान के अनुच्छेद 217 का संशोधन करके उसमें खण्ड (3) जोड़ दिया गया और उसे भूतलक्षी प्रभाव दिया गया। खण्ड (1) भी 5 अक्टूबर, 1963 से संशोधित कर दिया गया और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की अधिवर्षिता की आयु बासठ वर्ष नियत कर दी गई।

इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि अनुच्छेद 217 के खण्ड (3) का भूतलक्षी प्रवर्तन है, इसलिए राष्ट्रपति द्वारा पारित आदेश की विधिमान्यता को अनुच्छेद 217(3) के प्रकाश में न्यायनिर्णीत किया जाना चाहिए। प्रत्यर्थी की आयु से सम्बन्धित राष्ट्रपति के विनिश्चय से इसमें के प्रत्यर्थी पर बहुत ही गम्भीर प्रभाव पड़ा है तथा नैसर्गिक न्याय और निरपेक्ष व्यवहार के अनुसार यह अपेक्षित है कि राष्ट्रपति द्वारा इस प्रश्न के अवधारित किए जाने के पूर्व इसमें के प्रत्यर्थी को अपना साक्ष्य पेश करने का मौका दिया जाना चाहिए।

तत्पश्चात् राष्ट्रपति ने गृह मन्त्रालय के सचिव को निदेश दिया कि प्रत्यर्थी से यह अपेक्षा की जाए कि वह ऐसा व्यपदेशन करे, जैसा कि वह इस विषय पर करना चाहे और ऐसा साक्ष्य पेश करे जैसा वह अपने दावे के समर्थन में पेश करना चाहे। प्रत्यर्थी ने अपने पक्षकथन के समर्थन में एक जन्त्री और जन्मपत्री की फोटो स्टेट प्रतियां और कुछ शपथपत्र प्रस्तुत किए। जन्त्री और जन्मपत्री जन्म तारीख विनिश्चित करने के लिए सेण्ट्रल फॅरेन्सिक साइन्स लेबोरेटरी, कलकत्ता, को भेजी गई और वहां से रिपोर्ट प्राप्त हो जाने के पश्चात् वह मामला राष्ट्रपति के समक्ष रखा गया। राष्ट्रपति ने वह मामला

भारत के मुख्य न्यायाधिपति को उनकी सलाह प्राप्त करने के लिए निर्देशित किया। मुख्य न्यायाधिपति ने राष्ट्रपति को यह सलाह दी कि श्री मित्तर की आयु के प्रश्न का विनिश्चय इस आधार पर किया जाए कि उसका जन्म 27-12-1901 को हुआ था। प्रत्यर्थी ने अनेक बार अपनी वैयक्तिक सुनवाई के लिए राष्ट्रपति से प्रार्थना की किन्तु राष्ट्रपति ने उसे वैयक्तिक सुनवाई का अवसर देना आवश्यक नहीं समझा। जिस फाइल पर यह सलाह दी गई थी वह राष्ट्रपति को लौटा दी गई किन्तु राष्ट्रपति के समक्ष पेश किए जाने के पूर्व उसे गृह मन्त्री के समक्ष पेश किया गया। इसके बाद उस पर किए गए एक टिप्पण पर गृह मन्त्री और प्रधान मन्त्री के प्रतिहस्ताक्षर होने के पश्चात् वह फाइल राष्ट्रपति के समक्ष रखी गई। राष्ट्रपति ने उसी दिन उस पर अपना यह विनिश्चय अभिलिखित किया कि उन्होंने भारत के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा दी गई सलाह को स्वीकार कर लिया है और यह विनिश्चय किया है कि श्री ज्योति प्रकाश मित्तर की आयु इस आधार पर अवधारित की जानी चाहिए कि उसका जन्म सत्ताईस दिसम्बर, उन्नीस सौ एक को हुआ था। अक्टूबर, 1965 में प्रत्यर्थी ने राष्ट्रपति के नाम एक पत्र लिखा जिसमें यह प्रार्थना की गई थी कि जो विनिश्चय किया गया है वह उसे वैयक्तिक सुनवाई का अवसर दिए बिना किया गया है, अतः इस पर पुनः विचार किया जाना चाहिए। गृह सचिव ने प्रत्यर्थी को यह सूचना दी कि राष्ट्रपति का विनिश्चय अन्तिम है और उस पर पुनः विचार नहीं किया जा सकता।

3 अगस्त, 1966 को प्रत्यर्थी ने मेण्डेमस की रिट के लिए उच्च न्यायालय में एक पिटीशन फाइल किया। उस पिटीशन की सुनवाई न्यायाधिपति बसु ने की और उन्होंने भारत संघ को यह निदेश दिया कि गृह सचिव के तारीख 13 अक्टूबर, 1965 वाले पत्र द्वारा राष्ट्रपति के जिस आदेश की प्रत्यर्थी को संसूचना दी गई थी उसे प्रभावशील न किया जाए।

इस न्यायालय में यह अपील संविधान के अनुच्छेद 132(1) के अधीन प्रमाणपत्र लेकर भारत संघ की ओर से फाइल की गई है।

**अभिनिर्धारित**—संविधान के अनुच्छेद 217(3) को, जो कि संविधान में संविधान (पन्द्रहवां संशोधन) अधिनियम द्वारा समाविष्ट किया गया था, 26 जनवरी, 1950 से भूतलक्षी प्रभाव दिया गया था। इस कारण उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की आयु के बारे में उठने वाले सभी प्रश्नों का विनिश्चय राष्ट्रपति द्वारा, भारत के मुख्य न्यायाधिपति से परामर्श करने के पश्चात्, किया जाना होता है। प्रसामान्यतया न्यायिक शक्ति का प्रयोग उस प्राधिकारी द्वारा किया जाना चाहिए जिस प्राधिकारी में वह शक्ति निहित की गई हो। किन्तु अनुच्छेद 217(3) के अधीन उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की आयु के प्रश्न का विनिश्चय करने की शक्ति का प्रयोग, भारत के मुख्य न्यायाधिपति से परामर्श करने के पश्चात्, किया जा सकता है। (पैरा 19)

राष्ट्रपति के सचिव और गृह मन्त्रालय के सचिव द्वारा गृह मन्त्री और प्रधान मन्त्री के माध्यम से कागज-पत्रों को राष्ट्रपति को भेजने में जो प्रक्रिया अपनाई गई थी उसमें हुई अनियमितता से राष्ट्रपति द्वारा किए गए आदेश की विधिमान्यता पर कोई प्रभाव

नहीं पड़ता अथवा वह इस आधार पर प्रदूषित नहीं हो जाता है कि राष्ट्रपति का मार्गदर्शन गृह मन्त्री या प्रधान मन्त्री द्वारा किया गया था। (पैरा 23)

संविधान द्वारा परामर्श की जो बात अनुध्यात है, वह संवाद नहीं है। राष्ट्रपति को अनुच्छेद 217(3) के अधीन किसी न्यायाधीश की आयु का विनिश्चय करने से पूर्व भारत के मुख्य न्यायाधिपति की सलाह लेनी चाहिए। राष्ट्रपति द्वारा किए गए विनिश्चय की विधिमान्यता की शर्त यह नहीं है कि राष्ट्रपति और मुख्य न्यायाधिपति आमने-सामने बैठ कर बातचीत करें और प्रस्तावित कार्रवाई की बावत या राष्ट्रपति के समक्ष रखे गए और मुख्य न्यायाधिपति को उपलभ्य किए गए किसी साक्ष्य के महत्व के पक्ष-विपक्ष पर विचार-विमर्श करें। (पैरा 24)

अनुच्छेद 217 के खण्ड (3) में कोई ऐसी बात नहीं है जिससे यह अपेक्षित हो कि जिस न्यायाधीश की आयु विवादग्रस्त है उसे राष्ट्रपति द्वारा वैयक्तिक सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए : (पैरा 25)। न्यायिक प्रकृति की कार्यवाही में नैसर्गिक न्याय के मूल नियमों का अनुसरण किया जाना चाहिए। किन्तु यह बात नैसर्गिक न्याय के नियमों का आवश्यक अंग नहीं है कि उस पक्षकार को वैयक्तिक सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए जिसके कि उस आदेश द्वारा प्रभावित होने की सम्भाव्यता हो। (पैरा 26)

किसी न्यायाधीश की आयु से सम्बन्धित किसी जांच के आरम्भ मात्र से जो गम्भीर परिणाम निकलते हैं उनको ध्यान में रखते हुए हमारे संविधान निर्माताओं ने इस शक्ति को राष्ट्रपति में निहित करना आवश्यक समझा था। इस शक्ति का प्रयोग करने में किंचित मात्र भी सन्देह या उस शक्ति का दुरुपयोग होने की स्थिति से बचा जाना चाहिए अन्यथा न्यायालयों की स्वतन्त्रता के गम्भीरतः संकटापन्न होने की सम्भावना है। सूचना की तामील के मामले में भी और जहां उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की आयु के बारे में प्रश्न उठाया गया हो वहां उस न्यायाधीश से व्यपदेशन प्राप्त करने में भी साधारणतया राष्ट्रपति का सचिवालय ऐसा माध्यम होना चाहिए, तथा राष्ट्रपति को भारत के मुख्य न्यायाधिपति से इस प्रकार परामर्श करना चाहिए जैसा कि संविधान द्वारा अपेक्षित है एवं राष्ट्रपति और भारत के मुख्य न्यायाधिपति के बीच परामर्श में किसी अन्य निकाय या प्राधिकारी की मदाखलत नहीं होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त, प्रसामान्यतया मौखिक सुनवाई के लिए उस न्यायाधीश को अवसर दिया जाना चाहिए जिसकी आयु प्रश्नगत है और उस प्रश्न का विनिश्चय राष्ट्रपति द्वारा ऐसी सामग्री के आधार पर, जो सम्पृक्त न्यायाधीश द्वारा पेश की जाए, और उसके पेश किए गए साक्ष्य के आधार पर तभी जबकि वह उसे बता दिया गया हो, किया जाना चाहिए। अनुच्छेद 217(3) के अधीन कार्य करते हुए, राष्ट्रपति हमारे संविधान की स्कीम के अधीन, अति गम्भीर महत्व का न्यायिक कृत्य करते हैं। वे अपने मन्त्रियों की सलाह पर कार्य नहीं कर सकते। राष्ट्रपति के आदेश की घोषित अन्तिमता के होते हुए भी न्यायालय को समुचित मामलों में उस आदेश को अपास्त करने की अधिकारिता है, यदि यह प्रकट हो जाए कि वह आदेश साम्पार्श्विक बातों के आधार पर पारित किया गया है या नैसर्गिक न्याय के नियमों का पालन नहीं किया गया है या यह कि राष्ट्रपति का निर्णय कार्यपालिका द्वारा दी गई सलाह या व्यपदेशन से

प्रभावित है या वह किसी भी साक्ष्य पर आधारित नहीं है। किन्तु यह न्यायालय राष्ट्रपति के निर्णय की अपील नहीं सुनेगा और न न्यायालय ही इस बात को अवधारित करेंगे कि साक्ष्य को कितना महत्व दिया जाना चाहिए। साक्ष्य के भली प्रकार मूल्यांकन की बात पूर्णतया राष्ट्रपति पर छोड़ दी गई है और यह अभिनिर्धारित करना न्यायालयों का काम नहीं है कि जो साक्ष्य राष्ट्रपति के समक्ष रखा गया है और जिस पर निष्कर्ष निकाला गया है उससे उस दशा में जिसमें कि उन न्यायालयों से उस मामले का विनिश्चय करने के लिए अननुसरित निर्णय कहा जाता तो वे भिन्न निष्कर्ष ही निकालते। (पैरा 32)

**प्रभेदित निर्णय**

(1962) ए० सी० 322.

**बी० सुरेन्द्र सिंह काण्डा** बनाम **गवर्नमेण्ट आफ दि फेडरेशन आफ मलाया** (B. Surinder Singh Kanda *Vs.* Government of the Federation of Malaya). (पैरा 29, 31)

**निर्दिष्ट निर्णय**

ए० आई० आर० (1964) एस० सी० 1636 :

**माननीय न्यायाधिपति हिमांशु कुमार बोस, मुख्य न्यायाधिपति, कलकत्ता उच्च न्यायालय और एक अन्य** बनाम **ज्योति प्रकाश मित्तर** (Hon'ble Mr. Justice Himansu Kumar Bose, Chief Justice, High Court, Calcutta and Another *Vs.* Jyoti Prakash Mitter). (पैरा 4)

(1965) 2 एस० सी० आर० 53 :

**ज्योति प्रकाश मित्तर** बनाम **माननीय न्यायाधिपति हिमांशु कुमार बोस, मुख्य न्यायाधिपति, कलकत्ता उच्च न्यायालय और एक अन्य** (Jyoti Prakash Mitter *Vs.* Hon'ble Mr. Justice Himansu Kumar Bose, Chief Justice, High Court, Calcutta and Another). (पैरा 4)

**सिविल अपीली अधिकारिता : 1968 की सं० 52 वाली सिविल अपील।**

1966 के सं० 1798 (डब्ल्यू) वाले सिविल न्यादेश (सिविल रूल) में कलकत्ता उच्च न्यायालय के तारीख 7/8 अगस्त, 1967 वाले निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील।

**अपीलार्थी की ओर से** — सर्वश्री जगदीश स्वरूप, राम पंजवानी और एस० पी० नायर

**प्रत्यर्थी की ओर से** — प्रत्यर्थी स्वयं उपसंजात हुआ

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायाधिपति जे० सी० शाह ने दिया।

**मुख्य न्यायाधिपति शाह**—

ज्योति प्रकाश मित्तर—जिसे इसमें इसके पश्चात् 'प्रत्यर्थी' कहा गया है—अप्रैल, 1918 में हुई बिहार विश्वविद्यालय की मैट्रीकुलेशन प्रमाणपत्र परीक्षा के लिए अभ्यर्थी था। बिहार सरकार के राजपत्र में, जिसमें उसे सफल घोषित किया गया था, प्रत्यर्थी की

आयु अप्रैल, 1918 में 16 वर्ष 3 मास दर्शित की गई थी। प्रत्यर्थी यूनाइटेड किंगडम सिविल सर्विस कमीशन द्वारा सन् 1923 में ली गई परीक्षा में इण्डियन सिविल सर्विस में प्रवेश पाने के लिए अभ्यर्थी के रूप में सम्मिलित हुआ। उस अवसर पर उसने यह घोषणा की कि उसकी जन्म तारीख 27 दिसम्बर, 1901 है। प्रत्यर्थी ने मई, 1931 में कलकत्ता उच्च न्यायालय में विधि-व्यवसाय आरम्भ किया। 11 फरवरी, 1949 को प्रत्यर्थी अपर न्यायाधीश नियुक्त किया गया और 26 दिसम्बर, 1949 को स्थायी न्यायाधीश के रूप में उसकी नियुक्ति की जाने के लिए सिफारिश की गई। तब उसने यह घोषणा की थी कि उसकी आयु 45 वर्ष की है।

2. 1956 में भारत सरकार ने उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की शैक्षणिक और अन्य अर्हताओं तथा उनकी जन्म तारीखों से सम्बद्ध जानकारी एकत्र की। प्रत्यर्थी की यह घोषणा स्वीकार कर ली गई कि उसकी जन्म तारीख 27 दिसम्बर, 1904 है। भारत सरकार को जब यह जानकारी प्राप्त हुई कि प्रत्यर्थी की सही जन्म तारीख 27 दिसम्बर, 1901 है तब जांच प्रारम्भ की गई। 17 अप्रैल, 1959 को कलकत्ता उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति ने प्रत्यर्थी से अपेक्षा की कि वह अपनी जन्म तारीख के बारे में एक प्ररूपिक कथन प्रस्तुत करे। 27 मई, 1959 को प्रत्यर्थी ने कलकत्ता उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति को लिखा कि मैट्रीकुलेशन प्रमाणपत्र में लिखी उसकी आयु गलत है और उसमें उसे उसकी वास्तविक आयु से तीन वर्ष बड़ा बताया गया है क्योंकि यदि उसकी आयु की सही घोषणा की गई होती तो उसे सन् 1918 में मैट्रीकुलेशन परीक्षा में बैठने नहीं दिया जाता। प्रत्यर्थी ने पंचकारी बैनर्जी नाम के एक व्यक्ति का शपथपत्र भी पेश किया जिसमें यह कहा गया था कि उसकी आयु के बारे में सर आर्थर ट्रेवर हैरीज से, जो कि सन् 1949 में कलकत्ता उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति थे, चर्चा हुई थी।

3. पश्चिमी बंगाल के मुख्य मन्त्री ने यह सुझाव दिया था कि प्रत्यर्थी को इस बात के लिए सहमत हो जाना चाहिए कि वह अपनी सही जन्म तारीख के प्रश्न पर भारत के मुख्य न्यायाधिपति के विनिश्चय को मानेगा किन्तु प्रत्यर्थी ने इस सुझाव को स्वीकार नहीं किया। प्रत्यर्थी ने अपने इस पक्षकथन के समर्थन में कोई सामग्री भी पेश नहीं की कि उसका जन्म दिसम्बर, 1904 में हुआ था। तारीख 15 मई, 1961 वाले आदेश द्वारा भारत के राष्ट्रपति ने गृह मन्त्री की सिफारिश पर यह निदेश दिया कि प्रत्यर्थी की आयु मैट्रीकुलेशन प्रमाणपत्र में घोषित जन्म तारीख के आधार पर अवधारित की जाए।

4. इसके पश्चात् प्रत्यर्थी ने दिल्ली स्थित पंजाब उच्च न्यायालय में इस बात की घोषणा के लिए कि वह 27 दिसम्बर, 1964 तक पद धारण करने का हकदार है, और मेण्डेमस की ऐसी रिट के लिए एक पिटीशन फाइल किया जिसके द्वारा भारत संघ को राष्ट्रपति के आदेश को प्रभावशील करने से अवरुद्ध किया जाए। वह पिटीशन खारिज कर दिया गया। इस पर प्रत्यर्थी ने 2 जनवरी, 1962 को कलकत्ता उच्च न्यायालय के समक्ष एक पिटीशन फाइल किया जिसमें कलकत्ता उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति को एक पक्षकार अर्थात् प्रत्यर्थी बनाया गया था और उस पिटीशन में यह प्रार्थना की गई थी कि ऐसा आदेश दिया जाए जिसमें मुख्य न्यायाधिपति को यह निदेश दिया गया हो कि वह

प्रत्यर्थी की बाबत यह माने कि वह 27 दिसम्बर, 1964 तक पद पर बना हुआ है और उसे 'न्यायिक कार्य सौंपे'। उसने यह कहा कि भारत सरकार का विनिश्चय, जिसके अनुसरण में उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति ने कार्य किया है, 'अवैध, मनमाना और असांविधानिक' है और यह कहा कि मुख्य न्यायाधिपति को उस विनिश्चय के आधार पर कार्य करने की कोई अधिकारिता नहीं है। वह पिटीशन आरम्भ में ही खारिज कर दिया गया। किन्तु प्रत्यर्थी द्वारा फाइल की गई अपील में उच्च न्यायालय की विशेष न्यायपीठ ने यह निदेश दिया कि सशर्त न्यादेश (रूल निसि) जारी किया जाए। इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय के आदेश के विरुद्ध अपील खारिज कर दी : **माननीय न्यायाधिपति हिमांशु कुमार बोस, मुख्य न्यायाधिपति, कलकत्ता उच्च न्यायालय और एक अन्य** बनाम **ज्योति प्रकाश मित्तर**(1)। इसके पश्चात् कलकत्ता उच्च न्यायालय के पांच न्यायाधीशों की विशेष न्यायपीठ ने उस पिटीशन की सुनवाई की। प्रत्यर्थी द्वारा फाइल किए गए पिटीशन के बारे में यह आदेश दिया गया कि उसे खारिज कर दिया जाए और वह न्यादेश प्रभावोन्मुक्त कर दिया गया। उच्च न्यायालय के आदेश के विरुद्ध अपील किए जाने पर इस न्यायालय ने—**ज्योति प्रकाश मित्तर** बनाम **माननीय न्यायाधिपति हिमांशु कुमार बोस, मुख्य न्यायाधिपति, कलकत्ता उच्च न्यायालय और एक अन्य**(2)—कुछ निदेश दिए थे। उनके निदेशों के दिए जाने के कारणों को समझने के लिए कतिपय परिस्थितियों पर विचार किया जाना आवश्यक है।

5. जब इस न्यायालय में अपील लम्बित थी, उस समय संविधान के अनुच्छेद 217 का संविधान (पन्द्रहवां संशोधन) अधिनियम, 1963 द्वारा संशोधन कर दिया गया और उसमें भूतलक्षी प्रभाव से निम्नलिखित खण्ड (3) जोड़ दिया गया—

> "यदि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की आयु के बारे में कोई प्रश्न उत्पन्न होता है तो वह प्रश्न भारत के मुख्य न्यायाधिपति से परामर्श करके राष्ट्रपति द्वारा विनिश्चित किया जाएगा और राष्ट्रपति का विनिश्चय अन्तिम होगा।"

संविधान (पन्द्रहवां संशोधन) अधिनियम, 1963 द्वारा अनुच्छेद 217 के खण्ड (1) का भी 5 अक्टूबर, 1963 से संशोधन कर दिया गया और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की अधिवर्षिता की आयु बासठ वर्ष नियत कर दी गई।

6. इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि अनुच्छेद 217 के खण्ड (3) का भूतलक्षी प्रवर्तन है, इसलिए राष्ट्रपति द्वारा पारित आदेश की विधिमान्यता को अनुच्छेद 217 के खण्ड (3) के प्रकाश में अधिनिर्णीत किया जाना चाहिए और चूंकि गृह मन्त्रालय ने कामकाज नियमों के अनुसार फाइल राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत कर दी है, इसलिए इस प्रक्रिया का अनुच्छेद 217 (3) की अपेक्षाओं के अनुसार सात्म्यीकरण नहीं किया जा सकता। इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया—

> "अपीलार्थी (यहां पर प्रत्यर्थी) की आयु से सम्बन्धित प्रश्न से, जिस पर

---

(1) ए० आई० आर० (1964) एस० सी० 1636.
(2) (1965) 2 एस० सी० आर० 53.

1971(1) eILR(PAT) SC 1



राष्ट्रपति ने 15 मई, 1961 को विनिश्चय किया था, अपीलार्थी पर बहुत ही गम्भीर प्रभाव पड़ता है और इसलिए हमारा विचार यह है कि नैसर्गिक न्याय और निरपेक्ष व्यवहार की दृष्टि से यह अपेक्षित है कि राष्ट्रपति द्वारा इस प्रश्न का अवधारण किए जाने के पूर्व अपीलार्थी को अपना साक्ष्य पेश करने का मौका दिया जाना चाहिए। इसी कारण से हमारा यह विचार है कि महान्यायवादी की इस दलील को स्वीकार करना सम्भव नहीं होगा कि 15 मई, 1961 को राष्ट्रपति द्वारा पारित आदेश के बारे में यह समझा जा सकता है कि वह अनुच्छेद 217 (3) के अर्थान्तर्गत एक विनिश्चय है। हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि अपीलार्थी की इस व्यथा पर विचार करते हुए कि सुसंगत समय पर राष्ट्रपति के समक्ष उसका साक्ष्य पेश नहीं किया गया था, हम यह अभिनिर्धारित करने के लिए तैयार नहीं हैं कि उस प्रक्रम पर साक्ष्य पेश करने में उसकी ओर से हुई असफलता या उसके इन्कार को, अनुच्छेद 217 (3) के भूतलक्षी प्रवर्तन के प्रकाश में, निर्णीत किया जाना चाहिए। ऐसा विचार निरपेक्ष व्यवहार और नैसर्गिक न्याय की धारणा के, जो कि अनुच्छेद 217(3) द्वारा अनुध्यात जांच को लागू होनी चाहिए, बिल्कुल असंगत होगा।"

और यह मत भी व्यक्त किया—

"अपीलार्थी ने हमारे समक्ष यह दलील दी है कि यदि हम यह अभिनिर्धारित करें कि राष्ट्रपति का आक्षेपित विनिश्चय अनुच्छेद 217(3) के अधीन विनिश्चय की कोटि में नहीं आता है तो उक्त उपबन्ध के निबन्धनों के अनुसार वह राष्ट्रपति का औपचारिक विनिश्चय प्राप्त करने का हकदार है। महान्यायवादी ने यह स्वीकार किया है कि अपीलार्थी की यह दलील सु-आधारित है। इसलिए उसने भारत संघ की ओर से हमारे समक्ष यह कहा है कि यदि मुख्य प्रश्न पर हमारा विनिश्चय भारत संघ के विरुद्ध हो तो उसे भारत संघ उस विषय को हमारे निर्णय के सुनाए जाने के पश्चात् एक पखवाड़े के भीतर राष्ट्रपति के समक्ष रख देगा और राष्ट्रपति से यह निवेदन किया जाएगा कि वे अनुच्छेद 217 (3) के अधीन अपीलार्थी की आयु के प्रश्न का विनिश्चय करें। दोनों पक्षकारों ने हमारे समक्ष इस बाबत सहमति प्रकट की है कि यदि राष्ट्रपति का विनिश्चय अपीलार्थी के पक्ष में हो तो अपीलार्थी यह दावा करने का हकदार होगा कि वह कलकत्ता उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा पारित आदेश के होते हुए भी न्यायाधीश बना रहा है और जब तक कि वह अधिवर्षिता की आयु प्राप्त नहीं कर लेता तब तक न्यायाधीश बना रहेगा।"

7. तत्पश्चात् भारत के राष्ट्रपति ने गृह मन्त्रालय के सचिव को यह निदेश दिया कि वह प्रत्यर्थी से यह अपेक्षा करे कि प्रत्यर्थी ऐसा व्यपदेशन करे जैसा कि वह इस विषय पर करना चाहे और ऐसा साक्ष्य पेश करे जैसा वह अपने इस दावे के समर्थन में पेश करना चाहे कि उसकी सही आयु का अवधारण, 27 दिसम्बर, 1904 को ही उसकी जन्म तारीख मानकर किया जाना चाहिए, तथा राष्ट्रपति ने भारत के मुख्य न्यायाधिपति से परामर्श करने के

पश्चात् तारीख 29 सितम्बर, 1965 वाले आदेश द्वारा प्रत्यर्थी की जन्म तारीख 27 दिसम्बर, 1901 अवधारित की।

8. जिस प्रक्रिया का राष्ट्रपति ने आदेश देने में अनुसरण किया है प्रत्यर्थी ने उसकी विधिमान्यता को चुनौती दी है। इसलिए यह आवश्यक है कि उस आदेश के पारित किए जाने के पूर्व जो विभिन्न कदम उठाए गए थे उनका कुछ ब्यौरा दिया जाए। 17 नवम्बर, 1964 को गृह मन्त्रालय के सचिव ने एक टिप्पण तैयार किया जिसमें इस न्यायालय के विनिश्चय तक की मुकदमेबाजी का इतिहास बताया गया था और राष्ट्रपति से निवेदन किया कि अनुच्छेद 217(3) के अधीन प्रत्यर्थी की आयु अवधारित की जाए। सचिव का टिप्पण गृह मन्त्री और प्रधान मन्त्री के माध्यम से राष्ट्रपति को प्रस्तुत किया गया था। 21 नवम्बर, 1964 को राष्ट्रपति ने एक आदेश पर हस्ताक्षर किए जिसमें प्रत्यर्थी से यह अपेक्षा की गई थी कि वह ऐसा व्यपदेशन करे जैसा कि वह इस विषय में करना चाहे और ऐसा साक्ष्य पेश करे जैसा वह पेश करना चाहे। प्रत्यर्थी ने 7 दिसम्बर, 1964 को अपना व्यपदेशन पेश किया और उसके साथ दो दस्तावेजों—एक जन्त्री और एक जन्मपत्री—की फोटो स्टेट प्रतियां, जिनका उसने अवलम्बन किया था, और कुछ शपथपत्र भेजे। अपने अग्रेषण पत्र में प्रत्यर्थी ने राष्ट्रपति के समक्ष अपनी मौखिक सुनवाई की जाने के लिए प्रार्थना की थी जिससे कि वह 'अपना साक्ष्य पेश करने और उपाबन्धों के मूल दस्तावेजों को पेश करने में और अपने पक्षकथन के समर्थन में निवेदन करने में समर्थ हो सके। प्रत्यर्थी ने उसी दिन राष्ट्रपति के सचिव को पत्र लिखकर मौखिक सुनवाई की जाने के लिए अपनी प्रार्थना को दोहराया। 9 दिसम्बर, 1964 को गृह मन्त्रालय के सचिव ने प्रत्यर्थी को लिखा कि वह वे मूल दस्तावेजें भेजे जिनकी प्रतिलिपियां उसके व्यपदेशन के उपाबन्धों के रूप में भेजी गई थीं ताकि सचिव उन्हें राष्ट्रपति के समक्ष पेश कर सके। उसी दिन गृह मन्त्रालय के सचिव ने प्रत्यर्थी को तारीख 17 नवम्बर, 1964 वाले अपने उस टिप्पण की एक एक प्रतिलिपि भेजी, जिसमें राष्ट्रपति से अवधारण के लिए निवेदन किया गया था और तारीख 21 नवम्बर, 1964 वाले राष्ट्रपति के निदेश की एक प्रतिलिपि भी भेजी। प्रतिलिपियां प्राप्त करने के पश्चात् प्रत्यर्थी ने तारीख 10 दिसम्बर, 1964 वाले पत्र द्वारा एक और व्यपदेशन प्रस्तुत किया। उसी तारीख को प्रत्यर्थी ने गृह मन्त्रालय के सचिव को वे मूल 'दस्तावेजें प्रस्तुत कीं जिनका उसने अपने व्यपदेशन में अवलम्बन किया था। 14 दिसम्बर, 1964 को प्रत्यर्थी ने राष्ट्रपति के सचिव को एक पत्र लिखा जिसके साथ उसने अपने अतिरिक्त व्यपदेशन की प्रतिलिपि भेजी और यह प्रार्थना की कि वह व्यपदेशन और मूल दस्तावेजें, जो उसने गृह मन्त्रालय को दी हैं, उस मन्त्रालय से मंगवा ली जाएं और उन्हें राष्ट्रपति के समक्ष रख दिया जाए। 21 दिसम्बर, 1964 को गृह मन्त्रालय के सचिव ने उस पत्र का उत्तर देते हुए प्रत्यर्थी को यह निदेश दिया कि यह वह सभी साक्ष्य भेजे जिसका वह अवलम्बन करना चाहता है और उस पत्र में यह सूचना दी गई थी कि साक्षियों का कोई मौखिक साक्ष्य नहीं लिया जाएगा और प्रत्यर्थी साक्षियों के शपथपत्र पेश कर सकता है। वैयक्तिक सुनवाई की प्रार्थना के प्रति निर्देश करते हुए पत्र में यह कहा गया था कि राष्ट्रपति प्रत्यर्थी द्वारा पेश किए गए साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् यह विनिश्चय करेंगे कि क्या कोई वैयक्तिक सुनवाई

आवश्यक है और 'यदि राष्ट्रपति यह विनिश्चय करते हैं कि आपकी वैयक्तिक सुनवाई की जानी चाहिए तो आपको सम्यक् अनुक्रम में सूचित कर दिया जाएगा' । प्रत्यर्थी द्वारा पेश की गई मूल जन्मपत्री और जन्त्री 31 दिसम्बर, 1964 को गृह मन्त्रालय द्वारा सेण्ट्रल फॅरेन्सिक इंस्टीट्यूट, कलकत्ता, के निदेशक को भेजी गईं और यह निवेदन किया गया कि जन्मपत्री की और जन्त्री के हाशिये में स्याही से की गई प्रविष्टि की परीक्षा की जाए जिससे कि विशिष्टतया उस कागज की आयु जिस पर जन्मपत्री तैयार की गई थी, प्रयोग की गई स्याही की आयु और लिखने की आयु के प्रति निर्देश से उसकी असलियत का अवधारण किया जा सके" साथ ही यह निवेदन भी किया गया था कि जन्त्री में स्याही से की गई प्रविष्टि की असलियत के बारे में ऐसी ही रिपोर्ट दी जाए । 4 जनवरी, 1965 को प्रत्यर्थी ने चार अतिरिक्त शपथपत्र पेश किए जिनमें उसका अपना शपथपत्र भी शामिल था, जिसके द्वारा उसने इस बात की अभिपुष्टि की थी कि तिथि 12 पौष, 1311 बी० एस० के सामने जन्त्री के हाशिये में जो लिखावट थी, वह उसके मामा जदुनाथ बोस की थी और उसके मामा की उस समय मृत्यु हो गई थी जब प्रत्यर्थी आक्सफोर्ड का विद्यार्थी था ।

9. प्रत्यर्थी ने तारीख 3 फरवरी, 1965 को गृह मन्त्रालय के सचिव को एक पत्र लिखा जिसमें उसने दस्तावेज विशेषज्ञों को निर्देशित की जाने पर अभ्यापति यह दलील देते हुए की थी कि ये दस्तावेजें उससे यह कह कर अभिप्राप्त की गई थीं कि वे 'राष्ट्रपति के समक्ष पेश की जाने के लिए अपेक्षित हैं ।' प्रत्यर्थी ने यह मांग की कि उसे राष्ट्रपति के उस आदेश की प्रतिलिपि दी जाए जिसके द्वारा विशेषज्ञ को निर्देशित करने का आदेश दिया गया था और यह मांग भी की कि गृह मन्त्रालय और फॅरेन्सिक विशेषज्ञ के बीच जो पत्रव्यवहार हुआ, उसकी प्रतिलिपियां भी उसे दी जाएं । उसने यह भी निवेदन किया कि मूल दस्तावेजें उसे लौटा दी जाएं जिससे कि वह उन्हें किसी स्वतन्त्र विशेषज्ञ द्वारा परीक्षित करा सके, और वह विशेषज्ञ उनका परीक्षण करने के पश्चात् अपनी राय के बारे में शपथपत्र द्वारा या अन्यथा साक्ष्य देगा । उस पत्र के उत्तर में गृह मन्त्रालय के सचिव ने यह लिखा कि जिस प्रक्रिया का अनुसरण किया जाना है और जो अवसर प्रत्यर्थी को दिए जाने हैं वे पूर्णतया राष्ट्रपति के विवेक पर निर्भर करते हैं और उस मामले के अवधारण के पूर्व, जो राष्ट्रपति के समक्ष लम्बित हैं, प्रत्यर्थी द्वारा पेश किए गए दस्तावेजों को उस प्रक्रम में लौटानें का तो प्रश्न ही नहीं उठता । प्रत्यर्थी को यह भी सूचित किया गया था कि इस प्रश्न पर कि क्या उसे विशेषज्ञ साक्ष्य फाइल करने का अवसर दिया जाना चाहिए, सम्यक् अनुक्रम में विचार किया जाएगा । उसे यह भी सूचित किया गया था कि प्रत्यर्थी को अपने द्वारा पेश की गई दस्तावेजों के साक्ष्यिक महत्व के बारे में अपना पक्षकथन पेश करने का अवसर दिया जाएगा और उस पर राष्ट्रपति द्वारा जो भी विनिश्चय किया जाएगा, वह उस निमित्त उसे युक्तियुक्त अवसर देने के पश्चात् किया जाएगा ।

10. सेण्ट्रल फॅरेन्सिक इंस्टीट्यूट, कलकत्ता, के निदेशक और गृह मन्त्रालय के बीच कुछ पत्र-व्यवहार हुआ था । इंस्टीट्यूट के कमाण्डेण्ट की यह राय थी कि 'तारीख निर्धारण सम्बन्धी समस्याओं का पूर्णरूपेण समाधानप्रद रीति में हल करना बहुत ही कठिन बात है ।'

उसने प्रारम्भ में यह अनुदेश प्राप्त करने का प्रयास किया कि क्या वह दस्तावेजों को विरूपित या विकृत करने के लिए स्वतन्त्र है क्योंकि अपेक्षित परीक्षण दस्तावेजों के कुछ भागों को खींच निकाले बिना नहीं किया जा सकता। किन्तु बाद में उसने यह लिखा कि दस्तावेजों का रासायनिक परीक्षण द्वारा विकृत किया जाना वांछनीय नहीं है और इसके अतिरिक्त ऐसे परीक्षण से उस दस्तावेज की सुनिश्चित तारीख के बारे में बताना भी सम्भव नहीं होगा। इसके पश्चात्, निदेशक ने ऐसी 'सीमित परीक्षा' के, जो कि की जा सकती थी, आधार पर यह रिपोर्ट दी कि जन्त्री पर की लिखावट की स्याही की आयु के सम्बन्ध में कोई राय देना सम्भव नहीं है किन्तु उसके मतानुसार जन्मपत्री सन् 1909 से पूर्व नहीं लिखी गई होगी क्योंकि जिस कागज पर वह लिखी गई थी उसमें बांस का गूदा शामिल है जो कि सन् 1912 से पूर्व कागज के विनिर्माण में टीटागढ़ मिल्स द्वारा उपयोग में नहीं लाया जाता था। निदेशक ने उस स्याही की आयु के बारे में कुछ नहीं बताया जिस स्याही से जन्मपत्री लिखी गई थी।

11. गृह मन्त्रालय और विधि मन्त्रालय के बीच परामर्श हो जाने के पश्चात् गृह मन्त्रालय ने सन् 1904, 1949, 1950 और 1959 की कुछ पुरानी लिखावटें निदेशक के पास भेजीं और उससे यह निवेदन किया कि इनकी तुलना करके विवादग्रस्त जन्मपत्री और जन्त्री के हाशिये में लिखे गए टिप्पण की लिखावट की आयु अवधारित की जाए। निदेशक ने 17 अप्रैल, 1965 को यह लिखा कि 'ऐसी तुलनाएं करके कोई निश्चित राय देना असम्भव है, विशिष्टतया तब जब कि तुलनाधीन लिखावटें एक ही स्याही से और एक ही प्रकार के कागज पर न लिखी गई हों और वे एक जैसी दशाओं में स्टोर न किए गए हों, तथा 'संसार में कहीं भी किसी दस्तावेज विशेषज्ञ के लिए, चाहे वह कितना ही विख्यात क्यों न हो, जन्मपत्री की और जन्त्री के हाशिये में स्याही की लिखावट की सम्भाव्य तारीख के बारे में कोई निश्चित राय देना सम्भव नहीं होगा'।

12. निदेशक से दूसरी रिपोर्ट प्राप्त होने के पश्चात्, विधि मन्त्रालय ने अनुच्छेद 217 (3) के अधीन प्रत्यर्थी की आयु अवधारित करने के लिए जांच में, राष्ट्रपति के समक्ष प्रत्यर्थी को अवसर दिए जाने के बारे में प्रश्न उठाया। इस पर यह विनिश्चय किया गया था कि इस प्रश्न को भारत के मुख्य न्यायाधिपति की सलाह के लिए उनको निर्देशित किया जाए। 24 जुलाई, 1965 को भारत के मुख्य न्यायाधिपति ने राष्ट्रपति को प्रत्यर्थी की आयु का अवधारण करने के लिए अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के बारे में सलाह दी। इसके पश्चात् विधि मन्त्री द्वारा दिए गए सुझाव के अनुसरण में गृह मन्त्रालय ने 31 जुलाई, 1965 को प्रत्यर्थी को एक पत्र लिखा जिसमें उससे यह अपेक्षा की गई थी कि वह जन्मपत्री की तारीख या सन् बताए। प्रत्यर्थी ने तारीख 4 अगस्त, 1965 वाले अपने पत्र में यह कथन किया कि उसके लिए यह सम्भव नहीं है कि वह निश्चित रूप से जन्मपत्री की तारीख या सन् बता सके, किन्तु उसने यह कहा कि जन्मपत्री कम से कम सन् 1921 में विद्यमान थी जबकि उसके विवाह के अवसर पर जन्मपत्री का अवलोकन किया गया था। 23 फरवरी, 1965 को प्रत्यर्थी ने राष्ट्रपति के नाम एक तार भेजा जिसमें यह प्रार्थना की गई थी कि उसकी आयु के सम्बन्ध में शीघ्र ही विनिश्चय किया जाए।

15 मार्च, 1965 को उसने राष्ट्रपति को एक और तार भेजा जिसमें यह प्रार्थना की गई थी कि उसे अन्य दस्तावेजी साक्ष्य, जिसके बारे में उसने यह दावा किया कि वह पूर्वी पाकिस्तान में उपलभ्य हो सकता है, पेश करने की इजाज़त दी जाए, किन्तु कुछ समय पश्चात् उसने गृह मन्त्रालय के सचिव को यह सूचित किया कि पूर्वी पाकिस्तान में लोगों का सहयोग न पा सकने के कारण यह सम्भव नहीं है कि वह साक्ष्य प्राप्त हो जाए जिसका राष्ट्रपति को लिखे गए अपने पत्र में उसने वर्णन किया था तथा वह उस साक्ष्य से सन्तुष्ट है जिसे वह पहले ही पेश कर चुका है और जो उसके दृष्टिकोण में बहुत काफी है। उसने आगे यह लिखा—

> "अतः आप यह जान लें कि मुझे अपनी आयु के विषय पर कोई और साक्ष्य पेश नहीं करना है, जब तक कि मैं किसी विशेषज्ञ या विशेषज्ञों को बुलाने के लिए मजबूर नहीं हो जाता जैसा कि मैंने तारीख 3 फरवरी, 1965 वाले अपने पत्र में लिखा था।"

13 अगस्त, 1965 को फॅरेन्सिक साइन्स लेबोरेटरी के निदेशक की रिपोर्टों की प्रतिलिपियां गृह सचिव द्वारा प्रत्यर्थी को भेजी गई और साथ में एक अग्रेषण पत्र भेजा गया जिसके द्वारा प्रत्यर्थी को यह सूचित किया गया था कि यदि वह निदेशक द्वारा अभिव्यक्त राय पर कोई टिप्पणियां करना चाहता है तो वह उसे प्रस्तुत कर सकता है और यह कि यदि प्रत्यर्थी चाहे तो वह विशेषज्ञ की राय के रूप में, जिसका समर्थन उचित शपथपत्र द्वारा किया गया हो, उसके खण्डन स्वरूप साक्ष्य भी पेश कर सकता है तथा टिप्पणियां, साक्ष्य और शपथपत्र, यदि कोई हों, इस पत्र की तारीख से एक मास के भीतर भेजे जाएं। गृह सचिव के पत्र की प्राप्ति पर प्रत्यर्थी ने 1 सितम्बर, 1965 को गृह सचिव के नाम एक तार भेजा जिसमें यह प्रार्थना की गई थी कि राष्ट्रपति सभी कागज-पत्रों और दस्तावेजों को मंगवाएं, यदि उन्होंने पहले ही उन्हें न मंगवाया हो, और 'यदि किसी तरह भी आवश्यक हो' तो उसे अपनी बात सुनाने का अवसर प्रदान किया जाए। प्रत्यर्थी ने भी उसी दिन एक पत्र लिखा जिसमें यह कहा गया था कि उसने जो साक्ष्य पेश किया है वह 'निश्चायक' है और कोई अतिरिक्त साक्ष्य या उसके खण्डन के लिए कोई साक्ष्य पेश करने का कोई प्रश्न नहीं उठता है। उसने यह भी निवेदन किया कि बिहार और उड़ीसा राजपत्र की (जिसके अन्तर्गत उसे मैट्रीकुलेशन परीक्षा में सफल घोषित किया गया था) प्रविष्टि गलत है और उसने अपने पत्र की समाप्ति इस प्रकार की कि सभी सुसंगत दस्तावेजें राष्ट्रपति के समक्ष रखी जाएं और 'राष्ट्रपति कृपया उसकी आयु के प्रश्न का विनिश्चय करने के प्रयोजन के लिए उसे अपनी बात सुनाने का अवसर प्रदान करें।'

13. इस पर प्रत्यर्थी के मामले की फाइल राष्ट्रपति को पेश की गई। 16 सितम्बर, 1965 को राष्ट्रपति ने उस मामले को भारत के मुख्य न्यायाधिपति को निर्देशित किया और उस पर उनसे सलाह मांगी। 28 सितम्बर, 1965 को मुख्य न्यायाधिपति ने यह सिफारिश की कि प्रत्यर्थी की आयु इस आधार पर विनिश्चित की जाए कि प्रत्यर्थी 27 सितम्बर, 1901 को उत्पन्न हुआ था। मुख्य न्यायाधिपति ने सविस्तार सभी साक्ष्य उपवर्णित किया जिसमें सेण्ट्रल फॅरेन्सिक साइन्स लेबोरेटरी, कलकत्ता, के निदेशक डाक्टर आय्यंगर की

1971(1) eILR(PAT) SC 1



रिपोर्टें भी शामिल हैं जो प्रत्यर्थी की सही जन्म तारीख के विवाद के सम्बन्ध में हैं। तत्पश्चात् भारत के मुख्य न्यायाधिपति ने यह मत व्यक्त किया—

> "x x x x जिस प्रश्न का राष्ट्रपति ने विनिश्चय करना है वह यह है कि क्या श्री मित्तर की जन्म तारीख, जो उसके मैट्रीकुलेशन परीक्षा तथा इण्डियन सिविल सर्विस परीक्षा में बैठने के समय वर्णित की गई थी, गलत है; और स्वभावत: इससे यह प्रश्न उठता है कि क्या यह दर्शित किया गया है कि जन्त्री के हाशिये में स्याही से की गई यह प्रविष्टि कि श्री मित्तर का जन्म 27-12-1904 को हुआ था, समसामयिक है और वह ठीक है, जैसा कि उसका अभिकथन है। जिस जन्मपत्री का श्री मित्तर ने अवलम्बन किया है उसमें उसकी जन्म तारीख और समय दिया हुआ है किन्तु उससे श्री मित्तर को अधिक मदद नहीं मिलती है क्योंकि वह स्पष्टत: जन्त्री में की गई प्रविष्टि के आधार पर ज्योतिष शास्त्री श्री जोगेश चन्द्र देव शर्मा को दी गई जानकारी पर आधारित है। मैंने डाक्टर आय्यंगर द्वारा दी गई रिपोर्टों पर और श्री मित्तर द्वारा उन पर की गई टिप्पणियों पर और उन शपथपत्रों पर, जिनका श्री मित्तर ने अवलम्बन किया है तथा उस जन्त्री और जन्मपत्री पर, जिनको उसने अपने मामले का आधार बनाया है, भली प्रकार से विचार कर लिया है। मैंने इस विवाद के पिछले इतिहास से सम्बद्ध अन्य सुसंगत तथ्यों, श्री मित्तर के आचरण और उन आधारों को, जिन पर उसने इस विषय में पारित पूर्व आदेशों को चुनौती दी है, ध्यान में रखा है और मैंने यह निष्कर्ष निकाला है कि समाधानप्रद रूप से यह दर्शित नहीं किया गया है कि जन्त्री के हाशिये में स्याही से की गई प्रविष्टि उसी समय की गई थी और वह सही है, जैसा कि श्री मित्तर ने अभिकथित किया है। अत: मैं इस पक्षकथन को स्वीकार करने में असमर्थ हूं कि उसकी जन्म तारीख, जो उस समय दर्शित की गई थी, जब कि वह मैट्रीकुलेशन परीक्षा तथा इण्डियन सिविल सर्विस परीक्षा में बैठा था, 'बढ़ा कर लिखी गई थी'।
>
> अत: मैं राष्ट्रपति को यह सलाह देता हूं कि यह अभिनिर्धारित किया जाए कि श्री मित्तर यह दर्शित करने में असफल हुआ है कि उसका जन्म 27-12-1904 को हुआ था, न कि 27-12-1901 को तथा उसकी आयु के प्रश्न का विनिश्चय इस आधार पर किया जाए कि उसका जन्म 27-12-1901 को हुआ था।"

इसके बाद, जिस फाइल में यह सलाह दी गई थी, वह राष्ट्रपति को लौटा दी गई। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि जब फाइल राष्ट्रपति के सचिवालय में प्राप्त हुई थी, तब वह राष्ट्रपति के समक्ष पेश की जाने के पूर्व गृहमन्त्री के समक्ष पेश की जाने के लिए गृहमन्त्रालय के सचिव को भेज दी गई थी। 29 सितम्बर, 1964 को गृह सचिव ने यह मामला गृह मन्त्री के समक्ष रखा, और उस पर निम्नलिखित पृष्ठांकन किया गया था—

> "मामले का संक्षेप स्लिप 'ज़ैड' पर है। भारत के मुख्य न्यायाधिपति ने x x x x सुसंगत सामग्री पर विचार करने के पश्चात् अपने टिप्पण में अपनी सलाह दी है। गृह मन्त्री राष्ट्रपति को यह सिफारिश करें कि श्री जे० पी० मित्तर की आयु भारत के मुख्य न्यायाधिपति की सलाह के अनुसार अवधारित की जाए।"

गृह मन्त्री और प्रधान मन्त्री ने उस पृष्ठांकन पर प्रतिहस्ताक्षर किए। इसके बाद वह फाइल उसी दिन अर्थात् 29 सितम्बर, 1965 को राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत की गई। राष्ट्रपति ने अपना यह विनिश्चय अभिलिखित किया कि उन्होंने "भारत के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा दी गई सलाह को स्वीकार कर लिया है और यह 'विनिश्चय किया है' कि श्री ज्योति प्रकाश मित्तर की आयु इस आधार पर अवधारित की जानी चाहिए कि उनका जन्म सताईस दिसम्बर, उनीस सौ एक को हुआ था।"

14. गृह मन्त्रालय के सचिव ने प्रत्यर्थी को राष्ट्रपति का विनिश्चय संसूचित कर दिया। 15 अक्टूबर, 1965 को प्रत्यर्थी ने राष्ट्रपति के नाम एक पत्र लिखा जिसमें यह प्रार्थना की गई थी कि जो विनिश्चय उसे सुनवाई का अवसर प्रदान किए बिना किया गया है, उस पर पुनः विचार किया जाए और उसे भारत के मुख्य न्यायाधिपति और गृह मन्त्रालय के एक प्रतिनिधि की उपस्थिति में सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए। गृह सचिव ने प्रत्यर्थी को यह सूचना दी कि राष्ट्रपति का विनिश्चय अन्तिम है और उस पर पुनः विचार नहीं किया जा सकता। गृह सचिव ने यह भी उल्लेख किया कि प्रत्यर्थी को सरकारी विशेषज्ञ की राय पर टिप्पणी करने का अवसर दिया गया था किन्तु उसने अर्थात् प्रत्यर्थी ने तारीख 1 सितम्बर, 1965 वाले अपने पत्र द्वारा उस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया।

15. 3 अगस्त, 1966 को प्रत्यर्थी ने एक पिटीशन, जिसके विरुद्ध यह अपील की गई है, फाइल किया जिसमें यह मांग की गई कि भारत संघ को यह निदेश देने वाला मेण्डेमस रिट जारी किया जाए (i) कि वह विधि के अनुसार कार्य और कार्यवाही करे; (ii) तारीख 13 अक्टूबर, 1965 वाले अपने पत्र में भारत सरकार के सचिव द्वारा राष्ट्रपति का जो तात्पर्यित विनिश्चय उसे संसूचित किया गया था उसे विखण्डित कर दे, वापस ले ले और प्रत्याहृत कर ले, और (iii) राष्ट्रपति के तात्पर्यित विनिश्चय को प्रभावशील करने या आगे प्रभावशील करने से प्रविरत रहे।

16. इस पिटीशन की सुनवाई न्यायाधिपति डी० डी० बसु ने की। इस विवाद के इतिहास पर और भारत के तथा विदेशों के न्यायालयों के विनिश्चयों पर, विभिन्न शीर्षकों के अधीन, विस्तार से विचार करने के पश्चात् विद्वान् न्यायाधीश ने यह निष्कर्ष निकाला—

> "कि x x x x राष्ट्रपति का आक्षेपित आदेश, जिसका तात्पर्य गृह सचिव के तारीख 13-10-1965 वाले पत्र द्वारा पिटीशनर (प्रत्यर्थी) को संसूचित किया गया था, अनुच्छेद 217(3) के निबन्धनों के अनुसार राष्ट्रपति का 'विनिश्चय' नहीं है क्योंकि—
>
> (क) चाहे यह कृत्य न्यायिक-कल्प या प्रशासनिक हो किन्तु राष्ट्रपति ने वहीं कार्य किया जिसकी कि गृह सचिव और प्रधान मन्त्री ने सिफारिश की थी, और वे दोनों ही अनुच्छेद 217(3) के अधीन वाले कृत्य से असम्बद्ध हैं।
>
> (ख) चूंकि यह कृत्य न्यायिक-कल्प है इसलिए—
>
> (i) राष्ट्रपति को अपने समक्ष वाले प्रश्न पर अपनी स्वतन्त्र

विवेकबुद्धि का प्रयोग करने के लिए पर्याप्त समय और अवसर नहीं दिया गया;

(ii) पिटीशनर की राष्ट्रपति के समक्ष वैयक्तिक सुनवाई नहीं की गई, जैसा कि मामले की परिस्थितियों के अनुसार अपेक्षित था।

(ग) ऊपर वर्णित आधारों पर इस न्यायालय की हस्तक्षेप करने की अधिकारिता अनुच्छेद 217(3) के अधीन अन्तिमता खण्ड द्वारा वर्जित नहीं है।"

विद्वान् न्यायाधीश ने भारत संघ को यह निदेश दिया कि गृह सचिव के तारीख 13 अक्टूबर, 1965 वाले पत्र में राष्ट्रपति के जिस आदेश की संसूचना दी गई थी उसे प्रभावशील न किया जाए। विद्वान् न्यायाधीश ने यह मत व्यक्त किया कि भारत संघ यदि उचित समझे तो वह निर्णय की तारीख से दो मास के भीतर यह प्रार्थना करते हुए उस मामले को फिर से राष्ट्रपति के समक्ष रख सकता है कि प्रत्यर्थी की आयु अनुच्छेद 217(3) के अनुसार विनिश्चित की जाए।

17. भारत संघ की ओर से संविधान के अनुच्छेद 132(1) के अधीन प्रमाणपत्र के लिए प्रार्थना की गई थी। यह मत व्यक्त करते हुए कि मामले में संविधान के अनुच्छेद 217(3) के निर्वचन के बारे में सारवान् विधि-प्रश्न अन्तर्वलित है, न्यायाधिपति डी० डी० बसु ने यह प्रमाणपत्र प्रदान कर दिया जिसके लिए संविधान के अनुच्छेद 132(1) के अधीन प्रार्थना की गई थी। यह अपील इस प्रमाणपत्र के अनुसरण में फाइल की गई है।

18. संविधान के अनुच्छेद 132(1) के अधीन, किसी सिविल, दाण्डिक या अन्य कार्यवाही में दिए गए उच्च न्यायालय के किसी निर्णय, आज्ञप्ति या अन्तिम आदेश की अपील उच्चतम न्यायालय में हो सकती है, यदि वह उच्च न्यायालय यह प्रमाणित कर दे कि उस मामले में संविधान के निर्वचन का कोई सारवान् विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है। उच्च न्यायालय का एकल न्यायाधीश समुचित मामलों में यह प्रमाणित कर सकता है कि मामले में संविधान के निर्वचन का सारवान् विधि-प्रश्न अन्तर्वलित है। किन्तु ऐसा प्रमाणपत्र बहुत ही आपवादिक मामलों में दिया जाना आशयित है, जिन मामलों में कि सीधे अपील करना आवश्यक है और मामले के गम्भीर महत्व की दृष्टि से मामले का व्यापक लोक-हित या वैसे ही कारणों से शीघ्र ही विनिश्चय किया जाना आवश्यक है। यह मामला ऐसा मामला नहीं है जिसमें प्रमाणपत्र के लिए मांग की जाती या प्रमाणपत्र प्रदान किया जाता। विद्वान् न्यायाधीश के विनिश्चय के विरुद्ध अपील लैटर्स पेटेण्ट के अधीन उच्च न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ के समक्ष की जा सकती थी और उच्च न्यायालय में कार्यवाही न की जाने का कोई कारण नहीं बताया गया है। राष्ट्रपति का आदेश सन् 1961 में दिया गया था। प्रत्यर्थी को आदेश की तारीख को पुनः उसी पद पर नहीं रखा जा सकता क्योंकि वह अपने पक्षकथन के अनुसार भी 62 वर्ष से अधिक आयु का हो गया था। किन्तु चूंकि प्रमाणपत्र भारत संघ की ओर से मांगा गया था और वह प्रदान किया जा चुका है इसलिए हमने यह आवश्यक नहीं समझा कि प्रमाणपत्र को रद्द किया जाए और संघ से कहा जाए कि वह उच्च न्यायालय में अपील करने का सामान्य रास्ता अपनाए।

19. अनुच्छेद 217(3) को, जो कि संविधान में संविधान (पन्द्रहवां संशोधन) अधिनियम द्वारा समाविष्ट किया गया था, 26 जनवरी, 1950 से ही भूतलक्षी प्रभाव दिया गया था। इस कारण उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की आयु के बारे में उठने वाले सभी प्रश्नों का विनिश्चय राष्ट्रपति द्वारा, भारत के मुख्य न्यायाधिपति से परामर्श करने के पश्चात् किया जाना होता है। प्रत्यर्थी की, जो कि भारत के एक उच्च न्यायालय का एक न्यायाधीश था, आयु से सम्बद्ध एक विवाद उठा था और भारत के राष्ट्रपति ने भारत के मुख्य न्यायाधिपति से परामर्श करने के पश्चात् उस प्रश्न का विनिश्चय किया था। प्रसामान्यतया न्यायिक शक्ति का प्रयोग उस प्राधिकारी द्वारा किया जाना चाहिए जिस प्राधिकारी को यह शक्ति निहित की गई हो। किन्तु अनुच्छेद 217(3) के अधीन, उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की आयु के प्रश्न का विनिश्चय करने की शक्ति का प्रयोग भारत के मुख्य न्यायाधिपति से परामर्श करने के पश्चात् किया जाना होता है।

20. प्रत्यर्थी की, जिसने अपने मामले की पैरवी स्वयं की थी, इस दलील में कोई सार नहीं है कि वस्तुतः वह विनिश्चय भारत के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा, न कि राष्ट्रपति द्वारा, दिया गया था। राष्ट्रपति ने अभिव्यक्त रूप से यह विनिश्चय अभिलिखित किया है कि उन्होंने भारत के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा दी गई सलाह को स्वीकार कर लिया है और उन्होंने यह विनिश्चय किया है कि प्रत्यर्थी की आयु इस आधार पर अवधारित की जाए कि प्रत्यर्थी का जन्म सत्ताईस दिसम्बर, उन्नीस सौ एक को हुआ था। राष्ट्रपति ने मुख्य न्यायाधिपति की सलाह से कार्य किया; उन्होंने अपना निर्णय मुख्य न्यायाधिपति को अभ्यर्पित नहीं किया। राष्ट्रपति के आदेश को इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि उन्होंने स्वयं अपना निष्कर्ष नहीं निकला।

21. इसके बाद यह कहा गया कि जब राष्ट्रपति ने अपना विनिश्चय दिया तब राष्ट्रपति और मुख्य न्यायाधिपति के बीच कोई परामर्श नहीं हुआ, जैसा कि संविधान द्वारा अपेक्षित है; कि राष्ट्रपति का मार्गदर्शन गृह मन्त्री और प्रधान मन्त्री द्वारा किया गया था; कि इस मामले में जो साक्ष्य पेश किया गया है उस पर राष्ट्रपति ने स्वयं विचार नहीं किया; कि राष्ट्रपति के लिए यह बाध्यकर था कि वे प्रत्यर्थी को मौखिक सुनवाई का अवसर देते और चूंकि उन्होंने ऐसा नहीं किया है इसलिए आदेश अविधिमान्य घोषित किए जाने योग्य है; कि जो भी हो प्रत्यर्थी ने कई अवसरों पर यह निवेदन किया है कि मामले का विनिश्चय करने से पूर्व उसे मौखिक सुनवाई का अवसर दिया जाए और अन्यथा भी यह एक ऐसा मामला है जिसमें मौखिक सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए था, कि आदेश देने में कार्यपालिका राष्ट्रपति के साथ निकटता सहबद्ध थी, क्योंकि प्रत्यर्थी के नाम सूचना गृह मन्त्रालय के माध्यय से निकाली गई थी और भारत के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा कागज-पत्र राष्ट्रपति को भेजे गए थे, किन्तु राष्ट्रपति के सचिव द्वारा वे गृह मन्त्रालय को भेज दिए गए थे, और जब वे भारत के मुख्य न्यायाधिपति की सलाह के साथ प्राप्त किए गए थे तब उन पर गृह मन्त्री और प्रधान मन्त्री ने विचार किया था और जब उन्होंने भारत के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा दी गई सलाह पर सहमति प्रकट कर दी थी केवल तभी कागज-पत्र राष्ट्रपति को पेश किए गए थे; और 'भारत के मुख्य न्यायाधिपति ने जो भाग अदा किया है वह नैसर्गिक न्याय के सभी सिद्धान्तों के प्रतिकूल है'।

22. हम इन दलीलों पर उसी क्रम में विचार नहीं करना चाहते जिस क्रम में वे दलीलें हमारे समक्ष दीं गईं हैं, क्योंकि उनमें से बहुत सी दलीलें एक जैसी हैं। यह सच है कि प्रत्यर्थी से हेतुक दर्शित करने की अपेक्षा करने वाली सूचना इसलिए जारी की गई थी कि कागज-पत्र राष्ट्रपति के समक्ष पेश किए जा रहे थे और वह सूचना वस्तुत: सचिव द्वारा गृह मन्त्रालय को भेजी गई थी। किन्तु हमारा विचार है कि इस कारण कि सूचनाओं को तामील करने में और प्रत्यर्थी द्वारा सम्बोधित सूचनाओं को प्राप्त करने में राष्ट्रपति ने गृह मन्त्रालय से सहायता ली थी, इससे यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि राष्ट्रपति का मार्गदर्शन उस मन्त्रालय द्वारा किया गया था। यह स्पष्ट है कि अनुच्छेद 217(3) के अधीन भारत के राष्ट्रपति द्वारा की जाने वाली जांच के सम्बन्ध में कोई नियम नहीं बनाए गए हैं। यह पहला मामला उठा है जिसमें उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की आयु के प्रश्न का विनिश्चय किया जाना है। राष्ट्रपति के पास सूचनाओं की तामील करने और अनुच्छेद 217(3) के अधीन की जाने वाली जांचों के सम्बन्ध में अन्य कदम उठाने के लिए कोई सचिवालयिक सुविधाएं नहीं हैं।

23. भारत के मुख्य न्यायाधिपति ने जब अपनी सलाह के साथ उन कागज-पत्रों की फाइल को राष्ट्रपति के पास भेजा था तब वे कागज-पत्र तुरन्त राष्ट्रपति के समक्ष पेश नहीं किए गए थे किन्तु गृह मन्त्रालय को भेज दिए गए थे। सचिव ने एक टिप्पण अभिलिखित किया जिसमें गृह मन्त्री से यह निवेदन किया गया था कि राष्ट्रपति से यह सिफारिश की जाए कि प्रत्यर्थी की आयु, भारत के मुख्य न्यायाधिपति की सलाह के अनुसार, अवधारित की जाए। उस टिप्पण के नीचे गृह मन्त्री ने और उसके बाद प्रधान मन्त्री ने अपने आद्यक्षर किए। आदेश में कोई ऐसी बात नहीं है कि गृह मन्त्री ने सचिव द्वारा किए गए निवेदन के आधार पर कार्य किया। उसने तो केवल कागज-पत्रों पर प्रतिहस्ताक्षर किए थे और इसके बाद उन्हें प्रधान मन्त्री के पास भेज दिया था और प्रधान मन्त्री ने भी उस टिप्पण पर प्रतिहस्ताक्षर कर दिए थे। इस दलील में कोई बल नहीं है कि गृहमन्त्री और प्रधान मन्त्री ने अपनी अनुमति प्रकट की थी और उसके बाद ही राष्ट्रपति ने ऐसे कार्य किया था मानो वे अपने मन्त्रियों की सलाह पर कार्यपालिक प्राधिकार का प्रयोग कर रहे हों। ऐसा सोचने का कोई कारण नहीं है कि गृह मन्त्री या प्रधान मन्त्री ने सचिव द्वारा किए गए निवेदन के अनुसार कार्य किया। राष्ट्रपति के आदेश में भी कोई ऐसी बात नहीं है जिससे यह संकेत मिलता हो कि गृह मन्त्रालय के सचिव ने जो टिप्पण लिखा था उससे या गृह मन्त्री या प्रधान मन्त्री द्वारा किए गए हस्ताक्षरों से राष्ट्रपति प्रभावित हुए थे। राष्ट्रपति के आदेश के निबन्धन बहुत स्पष्ट हैं। उनसे यह दर्शित होता है कि राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायाधिपति की सलाह पर कार्य कर रहे थे और उन्होंने उसी आधार पर प्रत्यर्थी की आयु का विनिश्चय किया था गृह मन्त्री और प्रधान मन्त्री के माध्यम से कागज-पत्रों को भेजने में, उस रूप में मानो जिस विषय पर विचार किया जा रहा था उसका स्वरूप कार्यपालिक जैसा था, राष्ट्रपति के सचिव और गृह मन्त्रालय के सचिव द्वारा जो प्रक्रिया अपनाई गई थी, उसमें हुई अनियमितता से हमारे विचार से राष्ट्रपति द्वारा किए गए आदेश की विधिमान्यता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता अथवा वह इस आधार पर दूषित नहीं हो जाता है कि राष्ट्रपति का मार्गदर्शन गृह मन्त्री या प्रधान मन्त्री द्वारा किया गया था।

24. इस दलील में भी कोई सार नहीं है कि भारत के मुख्य न्यायाधिपति और राष्ट्रपति के बीच कोई परामर्श नहीं किया गया। संविधान द्वारा परामर्श की जो बात अनुध्यात है, वह संवाद नहीं है। अनुच्छेद 217(3) के अधीन राष्ट्रपति से यह अपेक्षा की गई है कि वे उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की आयु के प्रश्न को अवधारित करने के पूर्व भारत के मुख्य न्यायाधिपति से परामर्श करें। राष्ट्रपति को अनुच्छेद 217(3) के अधीन किसी न्यायाधीश की आयु का विनिश्चय करने से पूर्व भारत के मुख्य न्यायाधिपति की सलाह लेनी चाहिए। ऐसी सलाह लेने के लिए निस्सन्देह राष्ट्रपति को वह सभी साक्ष्य भारत के मुख्य न्यायाधिपति को उपलभ्य कराना चाहिए जो उनके कब्जे में हो। मुख्य न्यायाधिपति को उसी साक्ष्य के आधार पर राष्ट्रपति को अपनी सलाह प्रस्तुत करनी होती है। राष्ट्रपति द्वारा किए गए विनिश्चय की विधिमान्यता की शर्त यह नहीं है कि राष्ट्रपति और मुख्य न्यायाधिपति आमने-सामने बैठ कर बातचीत करें और प्रस्तावित कार्रवाई की बाबत या राष्ट्रपति के समक्ष रखे गए और मुख्य न्यायाधिपति को उपलभ्य किए गए किसी साक्ष्य के महत्व के पक्ष-विपक्ष पर विचार-विमर्श करें। प्रस्तुत मामले में, प्रत्यर्थी के विरुद्ध और उसके पक्ष में के साक्ष्य से सम्बद्ध कागज-पत्रों की फाइल भारत के मुख्य न्यायाधिपति को भेजने में और सलाह अभिप्राप्त करने में जो प्रक्रिया अपनाई गई उससे भारत के मुख्य न्यायाधिपति से परामर्श लेने से सम्बन्धित सांविधानिक अपेक्षा का उस समय पूर्णतया पालन हो गया था जबकि उसने राष्ट्रपति को अपनी सलाह दे दी थी।

25. राष्ट्रपति ने प्रत्यर्थी को अपना व्यपदेशन करने के लिए विभिन्न प्रक्रमों में काफी अवसर दिए थे जब राष्ट्रपति द्वारा प्रत्यर्थी की आयु के प्रश्न पर विचार किया जा रहा था उस समय जो साक्ष्य राष्ट्रपति के समक्ष रखा गया था वह सब साक्ष्य प्रत्यर्थी को बता दिया गया था और उसे यह अवसर दिया गया था कि वह उस बाबत अपना व्यपदेशन करे। अनुच्छेद 217 के खण्ड (3) में कोई ऐसी बात नहीं है जिससे यह अपेक्षित हो कि जिस न्यायाधीश की आयु विवादग्रस्त है उसे राष्ट्रपति द्वारा वैयक्तिक सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए। राष्ट्रपति समुचित मामलों में अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए सम्पृक्त न्यायाधीश को मौखिक सुनवाई का अवसर दे सकते हैं किन्तु वे ऐसा करने के लिए आबद्ध नहीं हैं। राष्ट्रपति द्वारा किया गया कोई ऐसा आदेश, जो अनुच्छेद 217 के खण्ड (3) द्वारा अन्तिम घोषित किया जाता है, केवल इसलिए अविधिमान्य नहीं होता कि सम्पृक्त न्यायाधीश को राष्ट्रपति द्वारा मौखिक सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया था। न्यायाधीश के विरुद्ध जिस साक्ष्य का उपयोग किए जाने की सम्भावना थी वह उसे बता देने के पश्चात्, न्यायाधीश को व्यपदेशन करने का जो अवसर दिया गया था उससे और व्यपदेशन और साक्ष्य पर विचार कर लिए जाने से अनुच्छेद 217(3) की अपेक्षाओं का अनुपालन हो जाता है। यह सच है कि प्रत्यर्थी ने ये निवेदन किए थे कि राष्ट्रपति को उसे मौखिक सुनवाई का अवसर देना चाहिए। प्रत्यर्थी ने यह दावा किया है कि उसका निवेदन स्वीकार कर लिया गया था और वह इस ख्याल में रहा कि उसे मौखिक सुनवाई का अवसर दिया जाएगा तथा उसे मौखिक व्यपदेशन का अवसर दिए बिना जो आदेश दिया गया है वह नैसर्गिक न्याय के नियमों के प्रतिकूल है। तारीख 7 दिसम्बर, 1964 को प्रत्यर्थी ने जो व्यपदेशन किया था, उसमें उसने यह निवेदन किया था कि उसे

राष्ट्रपति के समक्ष मौखिक सुनवाई का अवसर दिया जाए और अपना साक्ष्य पेश करने और मूल दस्तावेजें अर्थात् जन्त्री और जन्मपत्री पेश करने का तथा अपने मामले के समर्थन में निवेदन करने का अवसर दिया जाए। उसने इस निवेदन को अपने उस पत्र में दोहराया जो उसने उसी दिन राष्ट्रपति के सचिव को लिखा था। उस पत्र के उत्तर में तारीख 21 दिसम्बर, 1964 वाले पत्र द्वारा गृह मन्त्रालय के सचिव ने प्रत्यर्थी को यह सूचित किया कि साक्षियों का कोई मौखिक साक्ष्य नहीं लिया जाएगा किन्तु प्रत्यर्थी उन साक्षियों के, जिनका वह अवलम्बन करना चाहता है, शपथपत्र प्रस्तुत कर सकता है। प्रत्यर्थी ने व्यक्तिगत सुनवाई के लिए जो निवेदन किया था उसके सम्बन्ध में प्रत्यर्थी को यह सूचित किया गया कि राष्ट्रपति साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् यह विनिश्चय करेंगे कि क्या कोई वैयक्तिक सुनवाई आवश्यक है। उसे यह भी सूचना दी गई थी कि यदि राष्ट्रपति यह विनिश्चय करते हैं कि प्रत्यर्थी की वैयक्तिक सुनवाई की जाए तो प्रत्यर्थी को सम्यक् अनुक्रम में सूचना दी जाएगी। प्रत्यर्थी द्वारा 4 जनवरी, 1965 को लिखे गए पत्र के उत्तर में गृह मन्त्रालय के सचिव ने प्रत्यर्थी को यह सूचित किया कि जिस प्रक्रिया का अनुसरण किया जाना है और प्रत्यर्थी को जो अवसर दिए जाने हैं, 'वे पूर्णतया राष्ट्रपति के निदेश पर निर्भर करते हैं और प्रत्यर्थी को अपने द्वारा पेश की गई दस्तावेजों के साक्ष्यिक महत्व के बारे में अपना पक्षकथन कहने का अवसर दिया जाएगा और उस पर राष्ट्रपति द्वारा जो विनिश्चय किया जाएगा वह उसे उस निमित्त युक्तियुक्त अवसर दिए जाने के पश्चात् ही किया जाएगा। गृह मन्त्रालय के सचिव के नाम भेजे गए तारीख 28 अप्रैल, 1965 वाले अपने पत्र में प्रत्यर्थी ने यह कथन किया कि अपनी आयु के बारे में जो साक्ष्य उसने पहले ही पेश कर दिया है उसके अतिरिक्त उसे कोई और साक्ष्य पेश नहीं करना है। तारीख 1 सितम्बर, 1965 वाले अपने तार द्वारा प्रत्यर्थी ने राष्ट्रपति से यह निवेदन किया कि कागज़-पत्रों और दस्तावेज़ों को मंगवाया जाए यदि पहले ही वे न मंगवाए गए हों, और 'यदि किसी तरह भी आवश्यक हो' तो उसे सुनवाई का अवसर प्रदान किया जाए। किन्तु उसी दिन गृह मन्त्रालय के सचिव को सम्बोधित अपने पत्र में उसने यह लिखा कि सभी कागज़-पत्र राष्ट्रपति के समक्ष रखे जाएं और राष्ट्रपति 'उसकी आयु के प्रश्न का विनिश्चय करने के प्रयोजन के लिए उसे सुनवाई का अवसर प्रदान करने की कृपा करें।'

26. अनुच्छेद 217(3) के अधीन वैयक्तिक सुनवाई का अधिकार प्रत्याभूत नहीं किया गया है। न्यायिक प्रकृति की कार्यवाही में नैसर्गिक न्याय के मूल नियमों का अनुसरण किया जाना चाहिए। इस कारण प्रत्यर्थी व्यपदेशन करने का हकदार है। किन्तु यह बात नैसर्गिक न्याय के नियमों की आवश्यक अंग नहीं है कि उस पक्षकार को वैयक्तिक सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए जिसके कि उस आदेश द्वारा प्रभावित होने की सम्भाव्यता हो। न्यायालयों में की कार्यवाहियों के सिवाय, मौखिक व्यपदेशन करने का अवसर देने से इन्कार करने मात्र से कार्यवाही दूषित नहीं हो जाएगी। जिस पक्षकार के उस विनिश्चय से प्रभावित होने की सम्भाव्यता हो वह अपने विरुद्ध दिए जाने वाले साक्ष्य को जानने का और व्यपदेशन करने का अवसर पाने का हकदार है, किन्तु वह यह दावा नहीं कर सकता कि उसे वैयक्तिक सुनवाई का अवसर दिए बिना किया गया आदेश

अविधिमान्य है। जब कि राष्ट्रपति किसी न्यायाधीश की आयु के बारे में किसी विवाद का अवधारण करते हैं तब वे एक न्यायिक कृत्य का पालन करते हैं किन्तु राष्ट्रपति संविधान द्वारा गठित कोई न्यायालय नहीं हैं। यह बात कि क्या किसी विशिष्ट मामले में राष्ट्रपति को वैयक्तिक सुनवाई का अवसर देना चाहिए, वे स्वयं ही विनिश्चित करते हैं। यह प्रश्न राष्ट्रपति के विवेकाधिकार पर छोड़ दिया गया है कि वे यह विनिश्चय करें कि क्या सम्पृक्त न्यायाधीश को मौखिक सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए। अभिलेख से इस दृष्टिकोण को काफी समर्थन मिलता है कि राष्ट्रपति ने मौखिक सुनवाई का अवसर देना आवश्यक नहीं समझा था। कोई ऐसे जटिल प्रश्न नहीं थे जिनका कि राष्ट्रपति को विनिश्चय करना था। एक ओर तो मैट्रीकुलेशन प्रमाणपत्र और प्रत्यर्थी द्वारा यूनाइटेड किंगडम में बोर्ड आफ कमिश्नर्स के समक्ष किया गया अभ्यावेदन का, जबकि प्रत्यर्थी इण्डियन सिविल सर्विस परीक्षा में बैठने के लिए उपस्थित हुआ था, साक्ष्य मौजूद था। दूसरी ओर प्रत्यर्थी द्वारा प्रकथन किए गए थे उनका साक्ष्य मौजूद था कि उसका जन्म 27 दिसम्बर, 1904 को हुआ था जिसका कि उसने जन्त्री के हाशिये में की गई प्रविष्टि, जन्मपत्री और तत्कालीन मुख्य न्यायाधिपति सर आर्थर ट्रेवोर हैरीज के सचिव पंचकारी बनर्जी के शपथपत्र द्वारा समर्थन करने का प्रयास किया है। उस शपथपत्र में यह कथन किया गया था कि प्रत्यर्थी की आयु के प्रश्न पर मुख्य न्यायाधिपति से विचार-विमर्श किया गया था। प्रत्यर्थी द्वारा किए गए कथनों की सचाई का निर्णय उसके आचरण के प्रकाश में किया जाना है। जब उसे उच्च न्यायालय का स्थायी न्यायाधीश नियुक्त किया गया था तब और जब सन् 1960 में अपनी आयु के सम्बन्ध में उसके द्वारा दी गई अपनी दलील के समर्थन में सामग्री पेश करने के लिए उसे अवसर दिया गया था तब उसने अपनी जन्म तारीख के सम्बन्ध में कोई साक्ष्य नहीं दिया था। यदि इस साक्ष्य के आधार पर राष्ट्रपति का यह मत है कि विवादग्रस्त प्रश्न का विनिश्चय वैयक्तिक सुनवाई का अवसर दिए बिना किया जा सकता है तो यह न्यायालय उस आदेश को इस आधार पर अपास्त नहीं कर सकता कि आदेश नैसर्गिक न्याय के नियमों का अनुसरण किए बिना दिया गया है।

27. यह कहा गया कि राष्ट्रपति 29 सितम्बर, 1965 के मध्याह्न में भारत से पूर्वी योरोपीय देशों के दौरे पर गए और उनके पास भारत के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा दी गई सलाह पर विचार करने का और जो साक्ष्य उनके समक्ष रखा गया था, उस सब साक्ष्य पर ध्यान देने और अपने समक्ष वाले मामले पर कोई न्यायिक विचार करने का पर्याप्त समय नहीं था। सुनिश्चित कार्यक्रम को, जिसका पालन किया जाना आवश्यक था, ध्यान में रखते हुए यह कहा गया था कि राष्ट्रपति ने उस मामले को औपचारिक समझा और गृह मन्त्री और प्रधान मन्त्री की सलाह से प्राप्त मार्गदर्शन के कारण उन्होंने भारत के मुख्य न्यायाधिपति की सलाह को यन्त्रवत् स्वीकार कर लिया और अपनी विवेकबुद्धि को भारत के मुख्य न्यायाधिपति की विवेकबुद्धि के समक्ष अभ्यर्पित कर दिया। किन्तु मामले के इस पहलू पर कोई विश्वसनीय साक्ष्य मौजूद नहीं है। उच्च न्यायालय में ऐसा कोई आधार नहीं बताया गया था। इस न्यायालय में, भारत संघ के अतिरिक्त शपथपत्र के उत्तर में प्रत्यर्थी ने 24 फरवरी, 1967 को जो शपथपत्र फाइल किया था, उसमें प्रत्यर्थी ने ये दो आधार अधिकथित किए थे, कि (1) भारत के मुख्य न्यायाधिपति ने प्राइवेट तौर पर

1971(1) eILR(PAT) SC 1



संविधान के अनुच्छेद 217(3) के अधीन जांच या निर्देश के संचालन के बारे में गृह मन्त्रालय को सलाह दी थी और इस कारण वह अनुच्छेद 217(3) के अधीन राष्ट्रपति को सलाह देने या राष्ट्रपति द्वारा परामर्श किए जाने के लिए हकदार नहीं था और 'भारत के मुख्य न्यायाधिपति ने निर्देश के सम्बन्ध में जो भाग अदा किया था, वह नैसर्गिक न्याय और निरपेक्ष व्यवहार के प्रतिकूल है और उससे राष्ट्रपति को उसकी अपनी तात्पर्यित सलाह तथा राष्ट्रपति का तात्पर्यित विनिश्चय प्रदूषित हो गया है और इससे तात्पर्यित विनिश्चय अकृत बन गया है;' और (2) 'भारत के राष्ट्रपति 29 सितम्बर, 1965 को दोपहर के कुछ देर पश्चात् नई दिल्ली से पूर्वी योरोपीय देशों और इथोपिया के दौरे पर चले गए थे और उनके प्रस्थान के कुछ ही देर पहले उक्त निर्देश से सम्बद्ध कागज-पत्र उनके समक्ष उनके हस्ताक्षरों के लिए रखे गए थे जो इस बात का प्रतीक थे कि उन्होंने भारत के मुख्य न्यायाधिपति की सलाह के अनुसार प्रत्यर्थी की आयु अवधारित करने के लिए प्रधान मन्त्री और गृह मन्त्री की सिफारिश से प्रत्यर्थी की आयु का तात्पर्यित विनिश्चय किया था'। प्रत्यर्थी ने अपने इस शपथपत्र के साथ तारीख 30 सितम्बर, 1965 के 'स्टेट्समैन' के दैनिक संस्करण की एक प्रति उपाबद्ध की है जिसमें कि राष्ट्रपति के यथा-पूर्वोक्त प्रस्थान और यूरोप के लिए अपने प्रस्थान के पूर्व प्रत्यर्थी की आयु के प्रश्न पर राष्ट्रपति के तात्पर्यित विनिश्चय का साक्ष्य मिलता है। किन्तु इस बात का कोई प्रयत्न नहीं किया गया था कि इस विषय पर उच्च न्यायालय में अन्वेषण कराया जाए कि राष्ट्रपति के समक्ष कागज-पत्र कब पेश किए गए थे और उस सलाह पर राष्ट्रपति ने क्या विचार किया था और क्या उन्होंने यह विश्वास करके कि वह अपने मन्त्रियों की सलाह मानने के लिए आबद्ध हैं, यन्त्रवत् हस्ताक्षर कर दिए थे। ये ऐसी बातें हैं जो इस न्यायालय में पहली बार नहीं कही जा सकतीं।

28. इस अभिवचन पर कि भारत के मुख्य न्यायाधिपति ने जांच के संचालन और निर्देश के बारे में गृह मन्त्री को अनुचित तौर पर सलाह दी थी और इस कारण उन्होंने राष्ट्रपति को भी कोई सलाह देने के हक से अपने आप को वंचित कर लिया है, पिटीशन में कोई अभिकथन नहीं किया गया है और उच्च न्यायालय में कोई दलील नहीं दी गई थी। इस बात का कोई साक्ष्य नहीं दिया गया है कि प्रक्रिया और अन्तिम विनिश्चय के मामलों में राष्ट्रपति को सलाह देने के अलावा, भारत के मुख्य न्यायाधिपति ने गृह मन्त्रालय को प्राइवेट तौर पर या अन्यथा कोई सलाह दी थी। यह दलील कि भारत के मुख्य न्यायाधिपति पर सलाह देने में बाह्य बातों का प्रभाव पड़ा था, इस न्यायालय के समक्ष रखी गई किसी भी सामग्री पर आधारित नहीं है और इसलिए इसे खारिज किया जाना चाहिए।

29. प्रत्यर्थी ने हमारा ध्यान **बी० सुरेन्द्र सिंह काण्डा** बनाम **गवर्नमेण्ट आफ दि फेडरेशन आफ मलाया**(3) में जुडीशियल कमेटी के निर्णय की ओर आकृष्ट किया। उस मामले में मलाया के पुलिस आयुक्त ने एक आदेश पारित किया था जिसके द्वारा काण्डा

(3) (1962) ए० सी० 322.

1971(1) eILR(PAT) SC 1



नाम के एक व्यक्ति को, जो कि पुलिस निरीक्षक था, इस आधार पर पदच्युत कर दिया गया था कि एक न्यायनिर्णयन आफिसर के समक्ष जांच में काण्डा को एक दाण्डिक विचारण में साक्ष्य प्रकट न करने का दोषी पाया गया था। काण्डा ने यह दलील दी थी कि मलाया के संविधान के प्रवृत्त होने के पश्चात् वह शक्ति केवल पुलिस सर्विस कमीशन को प्राप्त थी और आयुक्त उसका एक अधीनस्थ प्राधिकारी था तथा जांच बोर्ड की उस रिपोर्ट की प्रति उसे प्रदाय नहीं की गई थी, जिसमें ऐसी सामग्री समाविष्ट थी जो कि उस पर अति प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली थी और जो न्यायनिर्णयन आफिसर को उस आरोप की जांच करना आरम्भ करने के पूर्व भेजी गई थी और उसके द्वारा वह पढ़ ली गई थी; उक्त प्रति का उसे प्रदाय न किया जाना अपीलार्थी काण्डा को मलाया के संविधान के अनुच्छेद 135(2) के अर्थान्तर्गत आरोप के उत्तर में 'सुने जाने का युक्तियुक्त अवसर देने में' असफलता और नैसर्गिक न्याय से इन्कार करने की कोटि में आता है। जुडीशियल कमेटी का निर्णय देते हुए लार्ड डेनिंग ने इस प्रश्न पर विचार किया कि क्या न्यायनिर्णयन आफिसर द्वारा सुनवाई इस कारण प्रदूषित थी कि उस आफिसर को वह रिपोर्ट, निरीक्षक काण्डा को उसे दुरुस्त करने या उसका खण्डन करने का अवसर दिए बिना दी गई थी। मलाया के उच्च न्यायालय के समक्ष जो प्रश्न उठाया गया था वह यह था कि न्यायनिर्णयन आफिसर की ओर से किसी ऐसी तरफदारी अर्थात् 'जान-बूझकर या अनजाने में किसी प्रभावी पक्षपात' की वास्तविक सम्भावना थी। अपील न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि तरफदारी की कोई सम्भावना नहीं थी। किन्तु लार्ड डेनिंग की राय में मामले को सुलझाने का समुचित रास्ता इससे भिन्न था। 'तरफदारी के विरुद्ध नियम का होना तो एक बात है और सुने जाने का अधिकार दूसरी'। ये दोनों नियम प्रायः नैसर्गिक न्याय कहे जाने वाले न्याय के आवश्यक अंग हैं। नैसर्गिक न्याय के दोनों ही आधार स्तम्भ हैं। x x x किन्तु ये दोनों पृथक्-पृथक् संकल्पनाएं हैं और दोनों की आधारभूत बातें भी भिन्न-भिन्न हैं। प्रस्तुत मामले में निरीक्षक काण्डा ने दूसरे नियम के भंग किए जाने का परिवाद किया था। उसने कहा था कि उसके सांविधानिक अधिकार का अतिलंघन हुआ है। उसे सुने जाने का युक्तियुक्त अवसर दिए बिना ही पदच्युत कर दिया गया था।

30. यदि सुने जाने का अधिकार कोई वास्तविक अधिकार होता है, जिसका कि अपना कोई मूल्य होता है तो उस अधिकार के साथ ही अभियुक्त व्यक्ति के पास उस मामले को जानने का अधिकार होना चाहिए जो उसके विरुद्ध बनाया जाता है। उसे यह ज्ञान होना चाहिए कि क्या साक्ष्य दिया गया है और क्या-क्या कथन किए गए हैं जो उस पर प्रभाव डालते हैं; और तब उसे उन कथनों को दुरुस्त करने या उनका खण्डन करने के लिए उचित अवसर दिया जाना चाहिए x x x निस्सन्देह इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि न्यायाधीश को या जिसको भी न्यायनिर्णयन करना हो, उसे एक पक्षकार की अनुपस्थिति में दूसरे पक्षकार के साक्ष्य की सुनवाई नहीं करनी चाहिए अथवा उससे व्यपदेशन प्राप्त नहीं करने चाहिएं। न्यायालय इस बात की जांच नहीं करेगा कि क्या साक्ष्य या व्यपदेशनों से उस पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है या नहीं। यह पर्याप्त है कि उनसे प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता था। न्यायालय प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की सम्भाव्यता की जांच नहीं करेंगे। इसका जोखिम होना ही काफी है। कोई भी व्यक्ति जो अपना मामला हार चुका है, इस बात में विश्वास

नहीं करेगा कि उसके साथ न्यायपूर्ण व्यवहार किया गया है, यदि दूसरे पक्षकार की पहले पक्षकार की जानकारी के बिना न्यायाधीश के पास पहुंच हो।

31. इस मत का आश्रय लेकर प्रत्यर्थी ने यह दलील दी कि प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की सम्भाव्यता कार्यवाहियों को प्रदूषित करने के लिए पर्याप्त है। किन्तु इस मामले में हमारा विचार यह है कि तरफदारी या प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की कोई सम्भावना नहीं थी जिस साक्ष्य पर राष्ट्रपति को विचार करना था वह सभी साक्ष्य विभिन्न प्रक्रमों में उनके समक्ष रखा गया था। जब हेतुक दर्शित करने की सूचना निकाली गई थी, उस समय राष्ट्रपति के समक्ष प्रत्यक्ष सामग्री मौजूद थी। तत्पश्चात् कुछ और साक्ष्य एकत्र किया गया था और वह भी राष्ट्रपति के समक्ष रखा गया था। यह बात नहीं कही गई है कि प्रत्यर्थी के विरुद्ध कोई भी साक्ष्य उसे नहीं बताया गया था। प्रत्यर्थी द्वारा दी गई मुख्य दलील यह है कि प्रत्यर्थी की आयु से सम्बद्ध प्रश्न का अवधारण स्वयं राष्ट्रपति ने नहीं किया, क्योंकि उन्होंने अपना निर्णय भारत के मुख्य न्यायाधिपति को अभ्यर्पित कर दिया था या उन्हें अपना निष्कर्ष निकालने के लिए इसलिए प्रेरित किया गया था क्योंकि गृह मन्त्री और प्रधान मन्त्री ने गृह मन्त्रालय के सचिव द्वारा किए गए संक्षेपलेख पर प्रतिहस्ताक्षर कर दिए थे। हमारा विचार यह है कि राष्ट्रपति ने एक पक्षकार की अनुपस्थिति में दूसरे पक्षकार से किसी साक्ष्य की सुनवाई नहीं की थी या कोई व्यपदेशन प्राप्त नहीं किया था। यदि उन्होंने ऐसा किया था तो यह प्रश्न उठेगा कि क्या कोई ऐसा व्यपदेशन किया गया था जिससे प्रत्यर्थी पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा हो। इस पर न्यायालय इस प्रश्न पर विचार नहीं करेगा कि क्या उस व्यपदेशन से वस्तुतः उस पर कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। युक्तियुक्त सम्भाव्यता का होना ही पर्याप्त है। प्रस्तुत मामले में राष्ट्रपति के समक्ष कोई ऐसा साक्ष्य न तो रखा गया था और न ही उस पर विचार किया गया था जो प्रत्यर्थी को बताया नहीं गया हो। इसलिए **बी० सुरेन्द्र सिंह काण्डा के मामले** का सिद्धान्त लागू नहीं होता।

32. यह बताना आवश्यक है कि राष्ट्रपति में, जिनके नाम संघ के सभी कार्यपालिक कृत्यों का पालन किया जाता है, अनुच्छेद 217 (3) द्वारा अति महत्वपूर्ण न्यायिक शक्ति निहित की गई है जिसका उच्चतर न्यायालयों के न्यायाधीशों की स्वतन्त्रता से काफी सम्बन्ध है। राष्ट्रपति संविधान के अनुच्छेद 74 द्वारा एक संविधान की व्यवस्था के अधीन प्रधान हैं जो अपने कृत्यों का पालन करने में मन्त्री परिषद् की सलाह पर कार्य करते हैं। किसी न्यायाधीश की आयु से सम्बन्धित किसी जांच के आरम्भ मात्र से जो गम्भीर परिणाम निकलते हैं उनको ध्यान में रखते हुए हमारे संविधान निर्माताओं ने इस शक्ति को राष्ट्रपति में निहित करना आवश्यक समझा था। यदि गणतन्त्रात्मक संस्थाओं को हमारे देश में स्थापित रहना है तो इस शक्ति का प्रयोग करने में, सन्देह किंचित् मात्र भी या उस शक्ति का दुरुपयोग होने की स्थिति से बचा जाना चाहिए अन्यथा न्यायालयों की स्वतन्त्रता के गम्भीरतः संकटापन्न होने की सम्भावना है। हम यह सिफारिश करते हैं कि सूचना की तामील के मामले में भी और जहां उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की आयु के बारे में प्रश्न उठाया गया हो वहां उस न्यायाधीश से व्यपदेशन प्राप्त करने में भी साधारणतया राष्ट्रपति का सचिवालय ऐसा माध्यम होना चाहिए; तथा राष्ट्रपति को भारत के

मुख्य न्यायाधिपति से इस प्रकार परामर्श करना चाहिए जैसा कि संविधान द्वारा अपेक्षित है एवं राष्ट्रपति और भारत के मुख्य न्यायाधिपति के बीच परामर्श में किसी अन्य निकाय या प्राधिकारी की मदाखलत नहीं होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त, हमारा मत यह है कि प्रसामान्यतया मौखिक सुनवाई के लिए उस न्यायाधीश को अवसर दिया जाना चाहिए जिसकी आयु प्रश्नगत है और उस प्रश्न का विनिश्चय राष्ट्रपति द्वारा ऐसी सामग्री के आधार पर, जो सम्पृक्त न्यायाधीश द्वारा पेश की जाए, और उसके विरुद्ध पेश किए गए साक्ष्य के आधार पर तभी जब कि वह उसे बता दिया गया हो, किया जाना चाहिए। अनुच्छेद 217 (3) के अधीन कार्य करते हुए, राष्ट्रपति हमारे संविधान की स्कीम के अधीन अति गम्भीर महत्व का न्यायिक कृत्य करते हैं। वे अपने मन्त्रियों की सलाह पर कार्य नहीं कर सकते। राष्ट्रपति के आदेश की घोषित अन्तिमता के होते हुए भी, न्यायालय को समुचित मामलों में उस आदेश को अपास्त करने की अधिकारिता है, यदि यह प्रकट हो जाए कि वह आदेश साम्पार्श्विक बातों के आधार पर पारित किया गया था या नैसर्गिक न्याय के नियमों का पालन नहीं किया गया है या यह कि राष्ट्रपति का निर्णय कार्यपालिका द्वारा दी गई सलाह या व्यपदेशन से प्रभावित है या वह किसी भी साक्ष्य पर आधारित नहीं है। किन्तु यह न्यायालय राष्ट्रपति के निर्णय की अपील नहीं सुनेगा और न न्यायालय ही इस बात को अवधारित करेंगे कि साक्ष्य को कितना महत्व दिया जाना चाहिए। साक्ष्य को भली प्रकार मूल्यांकन की बात पूर्णतया राष्ट्रपति पर छोड़ दी गई है और यह अभिनिर्धारित करना न्यायालयों का काम नहीं है कि जो साक्ष्य राष्ट्रपति के समक्ष रखा गया है और जिस पर निष्कर्ष निकाला गया है इससे उस दशा में जिसमें कि उन न्यायालयों से उस मामले का विनिश्चय करने के लिए कहा जाता तो वे भिन्न निष्कर्ष ही निकालते।

33. अपील मंजूर की जाती है। किन्तु मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए हम खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं देते हैं।

अपील मंजूर कर ली गई।

दे०/गो०